अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

श्री अरविन्द की क्रान्ति की अवधारणा एवं राष्ट्र सरकार की भावी सम्भावना

डॉ. किरण सूद
डॉ. कमला सकलानी

श्री अरविन्द के राष्ट्रवाद का अर्थ विस्तृत एवं जनकल्याणकारी है। इस राष्ट्रवाद का मूल लक्ष्य है कि राष्ट्र को इस विचार से बचाया जाए कि भविष्य वर्तमान की परिस्थितियों से सीमित है, क्योंकि अस्थाई कारणों से हम निम्न स्तर पर लाये गये हैं और हमें कमजोर बनाया गया है। राष्ट्रवादियों ने लोगों के दिमागों को सुन्दर और नियति की ओर मोड़ा और कहा कि ऐसा शताब्दियों में नहीं बल्कि निकट भविष्य में होगा और युवा पीढ़ियों में इस इच्छा ने नई पीढ़ियों में आग भर दी कि एक उज्जवल भविष्य बनाने की जाज्वल्यमान इच्छा है। जो केवल सपना ही प्रतीत नहीं होता, वह ऊर्जा व प्रेरणा का निरन्तर स्रोत बन गया। उन्होंने हमारे पूर्वजों की महान उपलब्धियों और महान सभ्यता का वर्णन किया व नई पीढ़ी को अपनी खोई हुई आध्यात्मिक और बौद्धिक विरासत को पुनर्जीवित करने के लिए आह्वान किया।

विकास के लिए हमारी अर्द्धकूलीन तन्त्रात्मक, अर्द्धसंघात्मक व्यवस्था को तोड़ना होगा ताकि वेदान्त की जनतान्त्रिक भावना को स्थापित किया जाए और उस सबको धारण किया जाए जो दैवी संस्कृति के लिए आवश्यक है और भारत के लिए एक नवीन व सशक्त सामाजिक संगठन बनाया जाये। यूरोपीय जनतंत्रात्मक सिद्धान्तों को लेते समय हमें व्यक्तिवाद, भौतिकवाद को छोड़ना है और जनतन्त्र को रखना है। हमें मानव जाति की समस्याओं को, हमें मानव जाति के लिए, उसकी कामनाओं में सामंजस्य और आध्यात्मिक विचार को स्वतंत्रता, समानता व बन्धुत्व की ओर मोड़ना है। अपने मिशन को पूरा करने के लिए अपने घर का स्वामी होना है।

हम विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को एक हथियार की तरह प्रयोग नहीं कर रहे हैं, ना ही हम ब्रिटिश व्यापार का गला घोंटना चाहते हैं। परन्तु हम अपने उद्योग और व्यापार

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

के विकास के लिए इन्तजार नहीं कर सकते हैं। हमें इस संघर्ष में जीतना ही है और एक नई व्यवस्था को स्थापित करना है। स्वदेशी की भावना, स्वराज के लिए जरूरी है। हमें अपनी कलाओं को जीवित रखना है और अपनी कलात्मकता को जीवित रखने के लिए किसी राष्ट्र का बहुत अधिक समृद्ध होना जरूरी नहीं है। उनके लिए जरूरी है एक सहयोगी राज्य और मानवता का नैतिक व आध्यात्मिक उत्थान।

श्री अरविन्द ने कहा – ''भारत एक महान राष्ट्र के रूप में जागृत हो रहा है ताकि वह विश्व को नया रूप में नेतृत्व दे सके। श्री अरविन्द का विश्वास था कि भारत का भविष्य आदर्शवादी राष्ट्र के साथ जुड़ा है। राष्ट्रवाद को जीतना ही है क्योंकि उन्हें ईश्वरीय मिशन के लिए कार्य दिया गया है। स्वराज, राजनैतिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित है। स्वराज भारत के सुनहरे अतीत को वर्तमान परिस्थितियों में स्थापित करना है। यह राष्ट्रीय महानता को सतयुग की वापसी है। भारत की गुरू और मार्गदर्शी होने की महान भूमिका का पुनर्स्थापन है। यह राजनीति में वेदांदित आदर्श को स्थापित करने के लिए जनता को दी जाने वाली पूर्ण स्वतंत्रता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बाद मे राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों द्वारा की गई स्वराज की धारणा श्री अरविन्द की स्वराज्य की अवधारणा की अंशमात्र थी। सच कहा जाये तो 1947 में प्राप्त स्वतन्त्रता व 1950 में लागू नये संविधान के बावजूद श्री अरविन्द स्वराज्य की अवधारणा पूर्ण रूप से सत्य नहीं हो सकी है। स्वराज्य का अर्थ केवल मात्र भारतीय वासियों की सम्प्रभू सरकार का स्थापित होना मात्र नहीं है। श्री अरविन्द की राष्ट्र सरकार की अवधारणा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है उसकी ओर स्वतन्त्र भारत में ध्यान नहीं दिया।

श्री अरविन्द की क्रान्ति की अवधारणा के अनुरूप हमें व्यक्तिवाद पर आधारित जनतंत्र के स्थान पर सामूहिक सहयोग से स्थापित ऐसे जनतंत्रत को स्थापित करना होगा जो पाश्चात्य राजनैतिक आदर्शों से नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति व सभ्यता के अनुरूप सामंजस्यपूर्ण और आध्यात्मिक आदर्शों से अनुप्राणित हो।

भारतीय सभ्यता, कलात्मक सौन्दर्य, आध्यात्मिक मूल्यों के अनुरूप जनतंत्र मे घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होगा, सम्प्रभू सरकार शोषण का उपरण नहीं अपितु पालनकर्ता के

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

रूप में अधिकारों और स्वतन्त्रता की संरक्षक होगी। औद्योगिक और शहरी विकास में भारतीय कलात्मक अभिरूचि लक्षित होगी।

श्री अरविन्द की भावी कल्पना के अनुरूप राज्य राजनैतिक स्वतंत्रता और आर्थिक विकास के लिए किसी भी प्रकार का संघर्ष या युद्ध यहाँ तक कि हत्या भी नैतिक मूल्यों के आधार पर घटित होगी। यह संघर्ष बुराई पर अच्छाई के लिए होगा। जिसमें जातिगत घृणा के लिए कोई स्थान नहीं होगा। योरोप में संघर्ष व युद्ध घृणा के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए भारत की भावी सरकार को अपना नया मॉडल विकसित करना होगा जिसमें वैश्विक मातृ शक्ति का स्वरूप अनिवार्य है। भारत को विश्व का नेतृत्व करना है इसलिए राजनीति एक पवित्र धर्म के रूप मे पूरी करनी होगा। इस राजनीति में विश्व बन्धुत्व का भाव जरूरी है। यह विजय शक्ति के बल पर नहीं अपितु प्रेम के बल पर होगी, इसमें शस्त्रों का प्रयोग नहीं अपितु जाज्वल्यमान् ऊर्जा का प्रयोग होगा। अच्छे भविष्य की कल्पना में यदि घृणा का लेशमात्र भी है तो उसे दूर करना होगा। यह शान्ति परस्पर सहयोग से होगी न कि गला काट प्रतियोगिता से। श्री अरविन्द की परिकल्पना में मानव जाति का आदर्श लक्ष्य राष्ट्रीय सीमाओं से परे है।

भावी क्रान्ति की अवधारणा मे परस्पर संघर्ष के लिए कोई स्थान नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण मानव जाति समान लक्ष्यों के लिए सामूहिक प्रयास करेगी, यह लक्ष्य होंगे विश्व शान्ति और दुःख और बीमारी से रहित प्रसन्नचित्त मानव जाति।

श्री अरविन्द की क्रान्ति की अवधारणा के आधार पर भावी क्रान्ति के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण विश्व एक रूप क्षेत्र हो।

श्री अरविन्द ने 26 जून 1909 में कहा, ''जब आत्मा जागृत होती है तभी राष्ट्र सजीव होता है और यह जीवन कार्यों के कई रूपों में अपने को व्यक्त करता है और यह कार्य मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति और आनन्द को व्यक्त करने के लिए करता है। यह सम्पूर्ण विश्व आनन्द के लिए अस्तित्व में है।''[1]

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

जब समस्त मानव जाति का लक्ष्य एक समान है तो भावी क्रान्ति का लक्ष्य राष्ट्रीय सीमाओं से विभाजित कैसे हो सकता है। भारत को भावी क्रान्ति का नेतृत्व करना है और समस्त मानव जाति को आत्म संरक्षण के लिए इस नेतृत्व को स्वीकार करना होगा। आज मानव जाति के सामने दो विकल्प हैं – प्रथम पीड़ा बीमारी से ग्रस्त अशान्त जीवन को यथारूप बनाये रखना या द्वितीय जीवन को आध्यात्मिक मूल्यों और आनन्ददायी त्याग के भाव से भोग करते हुए कलात्मक सुन्दर और सुशान्त जीने की कला को धारण करना। श्री अरविन्द का दृढ़ विश्वास था कि चेतना विकासोन्मुख है। व्यक्ति की चेतना की तरह भावी क्रान्ति राष्ट्र की चेतना को विकास के मार्ग पर ले जायेगी और भारत राष्ट्र के नेतृत्व में सम्पूर्ण विश्व में नवोत्थान होगा।

''भारतभूमि की विभक्त और परस्पर लड़ती हुई जातियों को एकता मे बाँधने की राजनीतिक उपयोगिता और आवश्यकता उन्होंने स्पष्ट रूप से अनुभव कर ली थी, पर उन्होंने यह भी देख लिया था कि इसकी प्राप्ति प्रादेशिक जातियों के स्वतन्त्र जीवन की या सामुदायिक स्वाधीनता की बलि देकर नहीं करनी चाहिए और अतएव केन्द्रीभूत राजतंत्र या कठोरतः एकात्मक साम्राज्यीय राज्य के द्वारा नहीं करनी चाहिए। वे जनता के मन पर जिस कल्पना को दृढ़तया अंकित करना चाहते थे उसे (मिलते–जुलते निकटतम) पाश्चात्य शब्दों में प्रकट करना चाहें तो कह सकते हैं कि वह एक सम्राट के छत्र के अधीन एक सर्वोपरि प्रभुत्व या एक राज्य संघ की कल्पना थी।''[2]

''प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ जो संघर्ष हुआ उसमें मौकियावेली के से राजकौशल के अभ्यास ने भूतकाल के श्रेष्ठतर नैतिक आदर्शों का स्थान ले लिया। आक्रमणात्मक महत्वाकांक्षा की किसी पर्याप्त आध्यात्मिक या नैतिक नियंत्रण के बिना खुला छोड़ दिया गया और राजनीति एवं शासन की नैतिकता के विषय में राष्ट्र का मानस स्थूल बन गया। जिसका प्रमाण मौर्य काल के निष्ठुर दण्ड विधान में और अशोक के रक्तपातपूर्ण उड़ीसा–विज में पहले ही मिल चुका था। परन्तु एक धार्मिक भावना और उच्च बुद्धि के कारण इस साम्राज्य का ह्रास रूका रहा और इसके बाद हजार साल से भी अधिक लम्बे समय तक वह (ह्रास) अपनी पराकाष्ठा को नहीं पहुँच सका।''[3]

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

"विघटन के इस काल में भी दो अद्भुत रचनाएँ प्रकट हुईं जो पुरानी अवस्थाओं में नये जीवन का आधार स्थापित करने के लिए भारत के राजनीतिक मानस का अन्तिम प्रयत्न थीं, किन्तु उनमें से कोई भी ऐसी नहीं सिद्ध हुई जो समस्या को सुलझा सकती। मरहठों का पुनरूज्जीवन जिसे रामदास की महाराष्ट्र धर्म विषयक परिकल्पना से प्रेरणा मिली और जिसे शिवाजी ने आकर प्रदान किया, इस बात के लिए प्रयत्न था कि प्राचीन रीति–नीति और भावना का जो अंश आज भी समझ या स्मृति में आ सकता है उसका पुनरूद्धार किया जायेगा।"[4]

"युग–युग का भारत मरा नहीं है, न उसने अपनी अन्तिम सर्जनक्षम वाणी ही उच्चारित की है, वह जीवित है और उसे अपने लिए तथा (देश–विदेश के) मानव–समुदायों के लिए अभी भी कुछ करना है। और जिसे अब जागृत होने की चेष्टा करनी होगी, वह अंग्रेजियत में रंगी कोई भी ऐसी पूर्वीय जाति नहीं जो पश्चिम की आज्ञाकारिणी शिष्या हो तथा उसकी सफलता और विफलता के चक्र का दुहराना ही जिसके भाग्य में बंधा हो, अपितु वह प्राचीन एवं स्मरणातीत (भारत) शक्ति है जो अपनी गहनतम आत्मा को फिर से प्राप्त करेगी, ज्योति और शक्ति के परम उद्गम की ओर अपना मस्तक पहले से भी ऊँचा उठाकर अपने धर्म के सम्पूर्ण मर्म तथा विशालतर रूप को खोजने की ओर अभिमुख होगी।।[5]

श्री अरविन्द का अधिकांश जीवन उस सदी में बीता जब भारत परतंत्र था। श्री अरविन्द ने स्वयं जेल के कठोर अनुभव को झेला, उन्होंने शासन तंत्र के यांत्रिक और अत्याचारी स्वरूप को महसूस किया। विदेशियों द्वारा किये गये अनेक अपमानों को सहा। यह विडम्बना भी है कि श्री अरविन्द जैसे महान चिन्तक को बार–बार अंग्रेज विद्वानों के द्वारा उल्लेखें को पढ़ना पड़ा जो भारत को असत्य कहने में संकोच नहीं करते थे, यह भी स्थापित करने की कोशिश करते थे कि भारतीय अपने आपको और अपनी विभिन्न जातियों को संगठित करने में असमर्थ हैं। अतः भारत में स्वशासन सम्भव नहीं है। विदेशी शासन के पराधीन रहना उनकी नियति है। श्री अरविन्द ने इन मिथ्या पाश्चात्य विश्वासों को तोड़ते हुए कहा –

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

''भारतीय शासनतंत्र का सच्चा स्वरूप हमारी समझ में केवल तभी आ सकता है, यदि हम इसे एक पृथक वस्तु के रूप में, अर्थात् अपनी जाति के चिंतन और जीवन के अन्य अंगों से स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाले एक यंत्र के रूप में न देख अपनी सामाजिक सत्ता–रूपी सजीव समष्टि के एक अंग के रूप में तथा उसके सम्बन्ध से इस पर दृष्टिपात करें।''[6]

श्री अरविन्द ने व्यक्तिगत चेतना को पहचाना व व्यक्तियों को समूह में जीने की नई दिशा दी। व्यक्तियों से मिलकर बने समुदाय को भी अपनी सामुदाई चेतना होती है, यह नया विचार दिया।

''कोई जाति या कोई महान मनुष्य–समुदाय, वास्तव में, एक सुसंगठित सजीव अस्तित्व होता है। इसकी एक सामूहिक अन्तरात्मा, मन और शरीर होता है, जिसे सामूहिक नहीं बल्कि सर्वगत या समष्टिगत कहना अधिक उचित होगा, क्योंकि 'सामूहिक' शब्द इतना यांत्रिक व निर्जीव है कि अन्तरीय सद्धस्तु का ठीक–ठीक बोध नहीं करा सकता। एक पृथक मनुष्य के स्थूल जीवन की भाँति समाज का जीवन भी जन्म वृद्धि यौवन, प्रौढ़ता और ह्रास के चक्र में से गुजरता है। इनमें से अन्तिम अवस्था यदि काफी आगे बढ़ जाये और इसकी ह्रासोन्मुखी धारा किसी प्रकार रोकी न जा सके तो समाज का जीवन भी वैसे ही नष्ट हो सकता है जैसे एक मनुष्य बुढ़ापे से मर जाता है। भारत और चीन को छोड़कर अन्य सभी प्राचीनतर जातियां और राष्ट्र इस प्रकार मिट गये। परन्तु सामूहिक सत्ता में भी पुररूज्जीवित होने, पूर्वावस्था प्राप्त करने और एक नया चक्र आरम्भ करने की सामर्थ्य होती है।''[7]

श्री अरविन्द का यह कथन वर्तमान भारत में नई ऊर्जा का संचार कर सकता है। यह सच है कि दीर्घकालीन तक पराधीन रहने के कारण भारत में निराशा का साम्राज्य हो सकता है, व व्यवस्था में कमियां दिखाई दे सकती हैं तो भी यह मानना गलत ही होगा कि सुव्यवस्था की सारी सम्भावनायें खत्म हो गई हैं। श्री अरविन्द लिखते हैं –

''जो जाति सजगता के साथ जीना सीख जाती है, प्रधानतः अपने स्थूल एवं बाह्य जीवन में ही नहीं, यहाँ तक कि केवल इसी में और उस जीवन–भावना या आत्म–भावना

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

की शक्ति में भी नहीं जो उसके विकास के परिवर्तनों को नियंत्रित करती है और उसके मनोभाव तथा स्वभाव की पूंजी है, बल्कि पीछे की ओर स्थित अन्तरात्मा और आत्मा में भी सजगता के साथ जीना सीख जाती है, वह जाति सम्भवतः कभी भी नष्ट नहीं हो सकती, विलुप्त होकर या दूसरी जातियों में विलीन होकर या घुल–मिलकर समाप्त नहीं हो सकती या अपना स्थान किसी नयी जाति एवं समाज के लिए खाली करने के लिए बाध्य नहीं हो सकती, बल्कि वह अनेक आदिम लघुतर समाजों को स्वयं अपने जीवन के अन्दर मिलाकर और अपनी स्वाभाविक उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर आरूद्ध होकर बिना मरे, अनेक नये जन्मों में से गुजर सकती है, और, यदि किसी समय ऐसा दीख भी पड़े कि वह सर्वथा समाप्त एवं नष्ट होने वाली है, तो भी वह आत्मा की शक्ति से पुनः अपनी पूर्वावस्था प्राप्त कर एक दूसरा तथा शायद अधिक गौरवशाली चक्र शुरू कर सकती है। भारत का इतिहास एक ऐसी ही जाति के जीवन का इतिहास रहा है।''[8]

भारत ऐसी प्राचीन संस्कृति की आधारशिलाा पर टिका है जिसका केन्द्रीयभूत भाव है। आध्यात्म यह अध्यात्म धर्म का पर्यायवाची नहीं है, यह भी सच है कि अध्यात्म का व्यक्त रूप धर्म है। श्री अरविन्द ने कहा –

''सम्भवतः यह काम भावी भारत का होगा कि वह अपने प्राचीन भगवत्प्रदत्त कार्य को पूरा करने वाले अर्थात् जीवन और आत्मा के बीच समन्वयसाधित करने वाले एक अधिक पूर्ण लक्ष्य, एक अधिक व्यापक अनुभव, एक अधिक सुनिश्चित ज्ञान को ग्रहण कर और उनके द्वारा स्वयं महान–विशाल बनकर गम्भीरतर अध्यात्मिक सत्य को ग्रहण कर और उनके द्वारा स्वयं महान–विशाल बनकर गम्भीरतर अध्यात्म्कि शक्तियों की अनुभूति के आधार पर मनुष्य–समाज की परमार्थ सत्ता और व्यवहार को प्रतिष्ठित करे और अपनी प्रजा के जीवन में इस प्रकार नई जान फूँक दे कि यह मानव जाति में विद्यमान महत्तर आत्मा की लीला, 'विराट्' अर्थात् विश्व–पुरुष' की सचेतन समष्टिगत आत्मा और शरीर बन जाये।''[9]

श्री अरविन्द के अनुसार मनुष्य की मूल वृत्तियों में परिवर्तन होना ही है क्योंकि यह प्रकृति की स्वाभाविक लीला है। मनुष्य को बौद्धिक स्तर पर विकसित होते हुए हम सब

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

देख रहे हैं, और आधुनिक तकनीक के सहारे राज्यों के बीच सीमायें टूट रही हैं। यह समय है कि मनुष्य जाति अपनी प्राणमय सत्ता को भी पहचानें। श्री अरविन्द के अनुसार –

''सामाजिक विकास की इस अवस्था का एक और महत्तर फल होता है उच्च एवं उज्जवल आदर्शों का आविर्भाव। ये आदर्श मनुष्य को उसकी प्राणमय सत्ता की सीमाओं तथा उसकी प्रथम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं एवं कामनाओं के ऊपर उठा ले जाने और इनके रूढ़ साँचों से बाहर निकालने की आशा बंधाते हैं। ये उसे सामाजिक जीवन पर साहसिक परीक्षण करने के लिए प्रेरित एवं अनुप्राणित करते हैं और वह परीक्षण एक अधिकाधिक आदर्श समाज के चरितार्थ होने की सम्भावनाओं का क्षेत्र खोल देता है।''[10]

भारत में शासन व्यवस्थाओं का एक ही रूप रहा हो ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है, और इन्हीं विभिन्न स्वरूपों में से आज के भारत का जन्म हुआ है। श्री अरविन्द ने स्पष्ट किया है –

''छोटे–छोटे प्राचीन भारतीय समाज अन्य समाजों की भाँति प्रबल और सहजस्फूर्त जीवन–शक्ति की प्रथम अवस्था में गुजर कर ही विकसित हुए। उन्होंने इसके आदर्श और इसकी कार्य–प्रणाली को स्वतंत्र और स्वाभाविक रूप से ही उपलब्ध किया और जीवन तथा सामाजिक और राजनीतिक संस्था के रूप को समष्टि–सत्ता के प्राणिक सहज–ज्ञान और स्वभाव के द्वारा ही गठित किया। जैसे–जैसे वे एक–दूसरे के साथ घुल–मिलकर एक बढ़ती हुई सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता में आबद्ध होते गये और उत्तरोत्तर विशाल राजनैतिक संघ बनाते गये, वैसे–वैसे उन्होंने एक समान भावना, समान आधार एवं सर्वसामान्य रचना का विकास किया जो गौण रूप–रेखाओं में विविधता के लिए अत्यधिक स्वाधीनता प्रदान करती थी। वहीं कठोर एकरूपता की कोई आवश्यकता नहीं थी। समान भावना और जीवन–प्रेरणा ही इस नमनशीलता पर सर्वसामान्य एकता का नियम लागू करने के लिए पर्याप्त थी।''[11]

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

भारत के सामाजिक राजनैतिक स्वरूप को अलग करने वाला तत्व है कि भारत में अनेकता में एकता है, और राजतंत्र में भी जनतंत्र तत्व दिखाई देते हैं। श्री अरविन्द ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा –

''भारतीय मन और जीवन का स्वाभाविक प्रकाश, उसके 'धर्म' अर्थात् यथार्थ सत्ता के विधान की सच्ची अभिव्यक्ति माने हुए उनका गहरा सम्मान करना भारतीय मनोवृत्ति का प्रबलतम अंग था और उच्च बौद्धिक संस्कृति की महान सहस्त्राब्दी में यह रक्षणात्मक प्रवृत्ति भंग नहीं हुई वरन् और भी अधिक दृढ़ रूप में सुस्थिर एवं प्रतिष्ठित हो गयी।''[12]

श्री अरविन्द ने भारतीय राजनैतिक अध्ययन का अध्ययन करते हुए क्रान्ति की अवधारणा के साथ संविधानवाद की अवधारणा को भी रूपायित किया। श्री अरविन्द का राजा प्रजा का निरंकुश शासक कभी नहीं था। इसके लिए भी यह जरूरी था कि वह कुछ नियमों व मर्यादा का पालन करे।

''इस प्रकार वस्तुतः भारतीय शासन प्रणाली एक अत्यन्त जटिल सामुदायिक स्वाधीनता और आत्मनिर्णय की प्रणाली थी। समाज की प्रत्येक वर्ग रूपी इकाई का अपना स्वाभाविक अस्तित्व होता था और वह अपने निजी जीवन और कार्य की व्यवस्था करती थी, अपने क्षेत्र और अपनी सीमाओं के स्वाभाविक विभाजन के कारण वह शेष इकाईयों से पृथक होती थी, किन्तु अच्छी तरह जाने–समझे हुए सम्बन्धों के द्वारा सम्पूर्ण समष्टि के साथ सम्बद्ध रहती थी। सामुदायिक सत्ता के अधिकारों और कर्तव्यों में प्रत्येक इकाई अन्यों की सहभागिनी होती थी, वह अपने निजी नियमों और विधानों को कार्यानिवत करती थी तथा अपनी निजी सीमाओं के भीतर शासन बंध का कार्य करती थी, पारस्परिक या सर्वमान्य हित के विषयों के विवेचन तथा नियमिनक` कार्य में अन्यों के साथ हाथ बंटाती थी और राज्य या साम्राज्य की महासभाओं में किसी न किसी रूप में तथा अपने महत्व की मात्रा के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त करती थी। राज्य, राजा या सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी संगति–स्थापन और सामान्य नियंत्रण एवं कार्यदक्षता का माध्यम होता था और वह एक सर्वोच्च अधिकार का प्रयोग करता था, जो निरपेक्ष और निरंकुश नहीं होता था, क्योंकि अपने सभी अधिकारों और शक्तियों में वह विधान और प्रजा की इच्छा के द्वारा

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

सीमाबद्ध रहता था और राज्य के भीतर के अपने सभी कार्यों में सामाजिक और राष्ट्रीय संस्था के अन्य सदस्यों का सहयोग मात्र होता था।

भारतीय शासन प्रणाली का सिद्धान्त, मूलसूत्र एवं वास्तविक संविधान यही था, वह सामुदायिक स्वाधीनता और आत्म–निर्धारण का एक जटिल मिश्रण थी जिसके ऊपर एक सर्वोच्च संगति–स्थापक सत्ता, एक शासक व्यक्ति एवं संस्था होती थी जो कार्यक्षम शक्तियों, पद और प्रतिष्ठा से सम्पन्न होते हुए भी अपने–विशिष्ट अधिकारों और कर्तव्यों की सीमा से बंधी रहती थी। शेष सबको नियंत्रित करती और साथ ही उनके द्वारा नियंत्रित रहती थी। सभी विभागों में उन्हें अपने ऐसे सक्रिय सहयोगियों के रूप में स्थान देती थी, जो सामुदायिक सत्ता के नियमन और प्रशासन में उसका हाथ बँटाते थे और राजा, जनता तथा उसके अंगभूत सभी समाज, सबके सब समान रूप से धर्म की रक्षा करने के लिए बाध्य होते थे।''[13]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में राजा जनता का स्वामी नहीं अपितु सेवक होता था। राजा के राजधर्म के वर्णन करते हुए श्री अरविन्द ने कहा –

''राजनीतिक अधिकारी राजा और परिषद् का तथा राष्ट्रतंत्र के अन्य शासन सदस्यों का मुख्य कार्य समाज के जीवन के यथार्थ विधान की रक्षा करने के लिए सेवा और सहायता करना था।''[14]

राजा के लोक कल्याणकारी स्वरूप के साथ–साथ उसके धार्मिक व आध्यात्मिक कर्तव्यों का वर्णन भारतीय राजतंत्र को उच्चतर स्तर पर स्थापित करती है। श्री अरविन्द के कथनानुसार –

''भारत के सांस्कृतिक मन की रचनाओं की चिरस्थायिता एवं उनकी छत्रछाया में पनपे जीवन की महानता, निश्चय ही उसकी अक्षमता का नहीं बल्कि अद्भुत राजनीतिक सहजबुद्धि और क्षमता का चिह्न है।''[15]

सत्ता का यही स्वरूप भारत में राष्ट्रवादी शासन की नींव है।

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

राष्ट्रीय सरकार में किसी समूह विशेष या दल विशेष के लिए कोई स्थान नहीं है, राष्ट्रीय सरकार का आधार है सामूहिक मन और उसके स्वरूप का निर्धारक तत्व है सामुदायिक इच्छा। ऐसे शासन प्रणाली में जनतत्रात्मिक तत्व का अर्थ है कि शासन का लक्ष्य किसी समूह विशेष को या व्यक्ति विशेष को लाभ पहुँचाना नहीं है। और यह शासन किसी व्यक्ति विशेष के अहम को पुष्ट करने के लिए नहीं अपितु सामुदायिक के प्रत्येक व्यक्ति को हित चिन्तन हेतु है।

''भारतीय शासन प्रणाली के समस्त निर्माण, विस्तार और पुनर्निर्माण में रचना का आधारभूत एकमात्र स्थायी सिद्धान्त था– सजीव रूप से आत्मनिर्धारण करने वाले सामुदायिक जीवन का सिद्धान्त, पर वह सामुदायिक जीवन केवल समष्टि–रूप में तथा मतदान की मशीनरी के द्वारा और राष्ट्र के किसी भाग के राजनीतिक मन का ही प्रतिनिधित्व करने वाली एक बाहरी प्रतिनिधि–संस्था के द्वारा आत्म–निर्धारण नहीं करता था। आधुनिक तंत्र केवल इतनी ही व्यवस्था कर सकता है, बल्कि उसके जीवन की रग–रग में तथा उसकी सत्ता के प्रत्येक पृथक–पृथक अंग में आत्म–निर्धारण करता था। एक स्वतंत्र समन्वयात्मक सामुदायिक व्यवस्था ही इसकी विशेषता थी, और स्वाधीनता की जो अवस्था इस शासन तंत्र का लक्ष्य थी वह उतनी वैयक्तिक नहीं जितनी कि सामाजिक थी।''[16]

श्री अरविन्द की राष्ट्रीय सरकार की आधारशिला भारत के समाज में छुपी हुई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत की आत्मा गाँव में बसी है। श्री अरविन्द ने इसी सत्य के आधार पर कहा –

''ग्राम समाज बराबर ही सामाजिक संगठन की स्थिर इकाई, उसका मजबूत रेशा या अटूट अणु–परमाणु बना रहा, परन्तु बीसियों और सैकड़ों गाँवों का एक समुदाय– जीवन विकसित हो गया, ऐसे प्रत्येक समुदाय का अपना–अपना अध्यक्ष होता था, तथा प्रत्येक को अपनी शासन–व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती थी, और जैसे कि कुल विजय के द्वारा या दूसरों के साथ संयुक्त होकर एक बड़ी जाति के रूप में विकसित हुआ, ये समुदाय एक

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

राज्य या महासंघाधीन गणतंत्रात्मक राष्ट्र के अंग बन गये और फिर ये भी वृहत्तर राज्यों के तथा अंत में एक या अधिक महान साम्राज्यों के मण्डल बन गये।''[17]

निशिचित रूप से ग्राम सभा की स्थापना से यह आशा जागती है कि कोई मनुष्य भारत की धरा पर कहीं भी निवास कर रहा हो उसके लिए सामाजिक कल्याण व न्याय की व्यवस्था रहेगी।

अद्भुत बात यह है कि श्री अरविन्द की शासन प्रणाली परिकल्पना में न केवल समस्त मनुष्य जाति अपितु, समस्त प्राणी जगत की कामना है।

''भारतीय मन एवं स्वभाव एक ऐसे सुघटित एवं सजीव सामंजस्य पर भी पहुँचा जो समाज–रूपी देह के सभी अंगों के स्वतंत्र कार्य–व्यापार का आदर करता था। अतएव उसने सभी अंगों के स्वतन्त्र कार्य–व्यापार का आदर किया था। एतएव उसने सभी मानवीय प्रणालियों को आक्रांत करने वाले ह्रास से न सही, पर कम से कम हर प्रकार के आभ्यंतरिक उपद्रव या दुर्व्यवस्था से समाज की रक्षा की।''[18]

श्री अरविन्द के उपरोक्त कथन से प्रत्येक भारतीय के मन में गर्व का भाव जागना स्वाभाविक है, भारत विश्व की किसी भी अन्य देश या जाति से निम्नतर नहीं है। भारत की सभ्यता और संस्कृति समस्त विश्व के लिए उदाहरण बनने में सक्षम है। भारत का राजनैतिक इतिहास भी अनेक विशेषताओं से युक्त है और अनेकता में एकता का उदाहरण।

''भारतीय मन का सम्पूर्ण आधार है इसका आध्यात्मिक एवं अन्तर्मुख झुकाव, आत्म–तत्व और अंतःसत्ता की वस्तुओं को प्रथम और प्रधान रूप में खोजने तथा अन्य सभी वस्तुओं को इस रूप में देखने की इसकी प्रवृत्ति कि वे गौण एवं पराश्रित हैं, उच्चतर ज्ञान के प्रकाश में व्यवहृत और निर्धारित करने के योग्य हैं और गम्भीरतर आध्यात्मिक लक्ष्य की एक अभिव्यक्ति है, उसका आरम्भिक साधन या क्षेत्र या सहायक उपकरण अथवा कम से कम एक सहचारी तत्व है। अतएव इसे जो कुछ निर्मित करना हो उसे पहले आन्तरिक स्तर पर और बाद में ही उसके अन्य पहलुओं में निर्मित करने की प्रवृत्ति।

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

यह मनोवृत्ति और इसके परिणामस्वरूप अन्दर से बाहर की ओर निर्माण करने की इस प्रवृत्ति को स्वीकार करते हुए यह अनिवार्य ही था कि भारत सबसे पहले जिस ऐक्य को अपने लिए निर्मित करे वह आध्यात्मिक और सांस्कृतिक ऐक्य ही हो।''[19]

और यह अनेकता में एकता का उदाहरण है –

''आध्यात्मिक एकता एक विशाल एवं नमनशील वस्तु है और वह राजनीतिक एवं नमनशील और वह राजनीतिक एवं वाह्य एकता की भाँति केन्द्रीकरण तथा एकरूपता पर आग्रह नहीं करती, वरंच वह राष्ट्र के संस्थान में सर्वत्र व्याप्त हुई रहती है और जीवन की अत्यधिक विविधता और स्वतंत्रता के लिए सहज ही अवकाश देती है।

यहाँ हम प्राचीन भारत में एकता स्थापित करने की समस्या की कठिनाई के रहस्य का यत्किंचित उल्लेख करेंगे। यह एक ऐसे केन्द्रीभूत एकरूप साम्राज्यीय राज्य साधारण साधन के द्वारा साधित नहीं की जा सकती थी जो स्वच्छंद विभिन्नता, स्थानीय स्वायत शासकों तथा सुप्रतिष्ठित सामुदायिक स्वाधीनताओं का समर्थन करने वाली सभी वस्तुओं को कुचल डाले और इस दिशा में जब–जब भी प्रयत्न किया गया, तब–तब वह प्रतीयमान सफलता की चाहे कितनी भी लम्बी अवधि के बाद विफल ही हो गया और हम यहाँ तक कह सकते हैं कि भारत की भवितव्यता के रक्षकों ने बुद्धिमत्तापूर्वक ही उसे विफल होने के लिए विवश किया ताकि इसकी आभ्यंतरिक आत्मा नष्ट न हो जाये और इसकी अन्तरात्मा अस्थायी सुरक्षा के इंजन के बदले में अपने जीवन के गम्भीर स्रोतों को न बेच डाले।

भारत के प्राचीन मन को अपनी आवश्यकता का सहज ज्ञान था। साम्राज्य के विषय में उसका विचार यह था कि यह एक ऐसा एकीकरण शासन होना चाहिए जो प्रत्येक वर्तमान प्रादेशिक एवं सामाजिक स्वाधीनता का सम्मान करे तथा किसी भी जावित स्वायत्त–शासन को अनावश्यक रूप से कुचल न डाले और जो भारत का यांत्रिक एकत्व नहीं वरन् इसके जीवन का समन्वय साधित करें।''[20]

भारत का यह अद्‌भुत विचार ही भारत को अन्य राज्यों से पृथक दिखाता है और इसका प्रतिबिम्ब भारतीय साहित्य में भी दिखाई देता है। एक ओर भारत के लिए महासंघ

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

की कल्पना है और दूसरी और ग्राम सभा जैसी छोटी इकाई के लिए भी स्वशासन की व्यवस्था है।

''ग्राम समाज ने अपनी शक्ति को कुछ–कुछ सुरक्षित रखा, परन्तु सर्वोच्च शासन–सत्ता के साथ उसका कोई जीवंत सम्बन्ध नहीं रहा और विशालतर राष्ट्रीय भावना को खोकर वह किसी भी स्वदेशी या विदेशी शासन को जो उसके अपने आत्म–निर्भर संकीर्ण जीवन का सम्मान करता हो, स्वीकार करने को उद्यत रहता था। धार्मिक समाज भी इसी भावना के रंग में रंग गये। जातियाँ किसी वास्तविक आवश्यकता के बिना किंवा देश की आध्यात्मिक या आर्थिक आवश्यकता के साथ कोई सच्चा सम्बन्ध रखे बिना यों ही बढ़ती चली गयी। और केवल अलंघ्य एवं रूढ़ विभाजन बन गयी, अब वे, जैसी कि वे मूल रूप में थीं, समग्र जीवन–समन्वय के सुसमंजस कार्य–निर्वाहक के साधन न रहकर एक पृथक करने वाली शक्ति बन गयी।''[21]

भारत में राष्ट्रीय एकता गुण होने पर भी श्री अरविन्द ने एकात्मक शासन व्यवस्था को अनुकूल नहीं समझा –

''भारतभूमि की विभक्त और परस्पर लड़ती हुई जातियों को एकता में बाँधने की राजनीतिक उपयोगिता और आवश्यकता उन्होंने स्पष्ट रूप से अनुभव कर ली थी, पर उन्होंने यह भी देख लिया था कि इसकी प्राप्ति प्रादेशिक जातियों के स्वतंत्र जीवन की या सामुदायिक स्वाधीनता की बलि देकर नहीं करनी चाहिये और अतएव केन्द्रीभूत राजतंत्र या कठोरतः एकात्मक साम्राज्यीय राज्य के द्वारा नहीं करनी चाहिये। वे जनता के मन पर जिस कल्पना को दृढ़तया अंकित करना चाहते थे उसे (मिलते–जुलते निकटतम) पाश्चात्य शब्दों में प्रकट करना चाहे तो कह सकते हैं कि वह सम्राट के छत्र के अधीन एक सर्वोपरि प्रभुत्व या एक राज्ससंघ की कल्पना थी।''[22]

श्री अरविन्द ने भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन किया। साथ ही वह आधुनिक पाश्चात्य विचारों के विशेषज्ञ थे, दोनों विचारधाराओं के आलोक में श्री अरविन्द ने कहा –

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

"प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ जो संघर्ष हुआ उसमें मौकियावेली के से राजकौशल के अभ्यास ने भूतकाल के श्रेष्ठतर नैतिक आदर्शों का स्थान ले लिया। आक्रमणात्मक महत्वाकांक्षा की किसी पर्याप्त आध्यात्मिक या नैतिक नियंत्रण के बिना खुला छोड़ दिया गया और राजनीति एवं शासन की नैतिकता के विषय में राष्ट्र का मानस स्थूल बन गया। जिसका प्रमाण मौर्य काल के निष्ठुर दण्ड विधान में और अशोक के रक्तपातपूर्ण उड़ीसा में पहले ही मिल चुका था। परन्तु एक धार्मिक भावना और उच्च बुद्धि के कारण इस साम्राज्य का ह्रास रूका रहा और इसके बाद हजार साल से भी अधिक लम्बे समय तक वह (ह्रास) अपनी पराकाष्ठा को नहीं पहुँच सका।"[23]

राष्ट्र सरकार की भावी सम्भावना

गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नई तकनीकी के कारण करवट लेते विश्व को सभी ने खुली आँखों से देखा जबकि इस सदी के पूर्वार्द्ध में वैचारिक स्तर पर हुई क्रान्ति को कुछ ही लोगों ने जाना और उससे भी कम संख्या में लोगों ने उस नई विचारधारा को समझा।

आज भी अधिकांश लोग श्री अरविन्द की पुस्तकों को कठिन रख कर किनारे रख देते हैं, जबकि सत्य यह है कि श्री अरविन्द की वैचारिक क्रान्ति अन्य दार्शनिकों की तुलना में कहीं अधिक सरल है। बेन्थम हीगल मॉर्क्स के विचारों को समझने वाले श्री अरविन्द की विचारधारा से आज भी अनभिज्ञ हैं क्योंकि वे लोग भौतिक स्तर पर विचार से जोड़ने को ही अपनी सफलता मानते हैं।

श्री अरविन्द के विचार को समझने के लिए किसी बड़ी डिग्री या किसी संस्था विशेष से प्रमाण–पत्र से अधिक जरूरी है चेतना के स्तर पर जागृत होना।

भारतीय राजनैतिक परिदृश्य में आज का समय श्री अरविन्द की वैचारिक क्रान्ति को धरातल पर उतारने के लिए सर्वदा अनुकूल है।

आज भारत के आम आदमी की चेतना व्यवस्था में सुधार के लिए छटपटाहट रहती है व आज भारत का प्रत्येक नागरिक विकास के नाम पर हो रहे विनाश के विरूद्ध क्रान्ति का झण्डा उठा कर खड़ा है। समुद्र तट से हिमालय की उच्च श्रृंखलाओं तक परिवर्तन की

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

मांग भी उठ रही है। विशेष बात यह है कि अव्यवस्था के विरूद्ध उठती इस आवाज को दमन करने का कोई सत्ता दुस्साहस नहीं कर सकती।

अतः श्री अरविन्द की विचारधारा के अनुरूप राष्ट्र सरकार की सम्भावनायें अग्रसर हो रही हैं। राष्ट्र सरकार की पहली जरूरत है मनुष्य का मनुष्य के भीतर का भेदभाव समाप्त हो, और मनुष्य जाति नदी में बहते जल की तरह समरस होकर अच्छा जीवन जीने को तत्पर हो।

यह अच्छा जीवन चन्द भौतिक उपलब्धियों का नाम नहीं अपितु मानव जीवन के अस्तित्व को सार्थक करने के लिए प्रयास है, मानव जीवन का मूल ध्येय है प्रत्येक स्तर पर विकासोन्मुख होना अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तर पर विकास के लिए प्रयास करे। यह क्रम सामूहिक रूप से राज्य स्तर पर प्रतिबिम्बित हो। उस क्षण राष्ट्र सरकार का बीज स्वतः अंकुरित होता हुआ अंकुरित होगा। मनुष्य–मनुष्य का भेद मिटेगा, मनुष्य और मनुष्य के बीच संघर्ष के स्थान पर सहयोग का भाव होगा। दलीय वैमनस्य के स्थान पर एकीकृत सामूहिक राजनैतिक चेतना जागृत होगी, सत्तासीन लोग स्वार्थ के स्थान पर सेवाभाव से कार्य करने के लिए तत्पर होंगे। फलतः योरोपियन नमूने पर स्थापित हारी सरकार का स्वरूप स्वतः बदल जायेगा।

कानून का राज्य भय से नहीं अपितु निष्ठाभाव से संचालित होगा, आपसी उठापटक के स्थान पर परस्पर प्रेम व सौहार्द का वातावरण होगा, भारतीय राष्ट्र में अन्तर्निहित एकता का भाव सतह पर आते ही भारत विश्व के लिए ऐसी नई व्यवस्था का उदाहरण होगा जो ब्रह्माण्ड में उगते हुए नये नक्षत्र की तरह नई रोशनी विस्तारित करने में सक्षम होगा। यह सुनहरी रोशनी भी आशा की किरण की दृष्टि करेगी, जनतंत्र का स्वरूप गिने–चुने लोगों के हित सिद्धि का उपकरण बनना किसी भी राष्ट्र की नियति नहीं है। निश्चित रूप से भारत राष्ट्र की मूल परिभाषा एकत्व भाव का सर्वव्यापी होना सत्यसिद्ध करेगा।

Volume 7, Issue3, (July-September, 2019)
Impact Factor: 5.659 [ISSN: 2348 - 2605]
Peer Reviewed Refereed Journal

सन्दर्भ सूची

1. श्री अरविन्द, राष्ट्रवाद : भूत और भविष्य, पृष्ठ 401, प्र0 605001।
2. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 415
3. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 417, 418
4. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 423
5. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 424
6. श्री अरविन्द, भारतीय संस्कृति के आधार, पृष्ठ सं0 373, प्र0 605002।
7. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 374
8. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 373
9. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 375
10. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 376, 377
11. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 378, 379
12. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 379, 380
13. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 383, 384
14. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 382, 383
15. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 386
16. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 386
17. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 387
18. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 399
19. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 408
20. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 410, 411
21. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 412
22. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 415
23. .... तदैव .... पृष्ठ सं0 417, 418